THE ECONOMIC TIMES

Date:19-08-23

No Cottage Industry, Now Modern Craft

Indian artisanship needs to grow brands

ET Editorials

High craftsmanship got much-needed patronage — and a reason to modernise — this week, with the Union Cabinet clearing a ₹13,000-crore scheme that Prime Minister Narendra Modi promised during his Independence Day speech. The 'Vishwakarma' scheme aims to nurture the skills of artisans and craftspersons, and maintain a quality-aesthetic standard that ensures they are integrated with high-value value chains. This is an important step. Indian products have so far failed to make the grade as art and craft one is willing to pay generously for. This is largely to do with the absence of brands. Bengaluru's Kempegowda International Airport's Terminal 2's modern 'yet' exquisite engineered-bamboo interiors is as much high artisanship as the intricate dhokra work of eastern India. Kashmiri papier-mâché works selling in Delhi highstreet shops should have the brand recall of Bruges crochet work or Venetian glass products.

The high-end crafts market is hyper rarefied and competitive. Which means the need for careful brand-building not via 'PIB'-type tacky brochuring or fusty emporia, but through curated exhibitions and international touring shows. Which is why Indian craftsmanship must reinvent itself, moving away from the 'cottage industry' to the studio-workshop, gallery, shopfront value chain that lifts the whole ecosystem to a materially and qualitatively higher level.

This can happen if there is a dedicated, long-term focus on a few aspects: improving the quality and aesthetics (colour, design, use of materials) of traditional products; skill development of artisans; infusion of new techniques and technology; and a rousing, modern, global-facing marketing intent. Quality and innovation — of design, of marketing — must be a non-negotiable ingredient. 'Traditional' can't be the only box to tick. The look and feel of most Indian artisanal works haven't changed over years, indeed, centuries. That craft is equally an art must be driven home in this necessary push towards India's new value invested in its craftspersons, crafts and craftiness.

दैनिक भास्कर

Date:19-08-23

अपराध न्यायशास्त्र बदलाव की जरूरत है

संपादकीय

अनुभव और युवा शक्ति के अद्भुत मिश्रण के रूप में डेमोग्राफिक डिविडेंड आज भारत में सबसे अधिक है। लेकिन इस आयु का व्यक्ति अगर दुष्कर्म करे, दस साल की सजा पाए, सात साल बाद उसे 'अच्छे आचरण' के कारण समय-पूर्व रिहा कर दिया जाए और लौटकर फिर दुष्कर्म करे, तो इसे किसकी गलती माना जाए? हमारा अपराध न्यायशास्त्र सजा को राज्य का प्रतिकार न मानकर दोषी के सुधार के सिद्धांत पर बनाया गया। आचरण 'अच्छा' मानकर पहले छोड़ना अपराध-प्रवृत्ति को कम करने की जगह उद्दीप्त करने वाला साबित हुआ। ऐसा अपराधी अगर सात साल की सजा से भी नहीं बदला तो मतलब है कि सजा का काल मायने नहीं रखता। क्या सजा अपराधी की मनोदशा में कोई सुधार नहीं लाती? अगर ऐसा है तो क्या हमें अपराध न्याय प्रणाली पर विचार करने की जरूरत नहीं है? क्या कानून की सख्ती अपराधी को हतोत्साहित नहीं करती? कहीं ऐसा तो नहीं कि दुष्कर्म की प्रवृत्ति मानसिक बीमारी हो और हम इलाज जेल में डालकर कर रहे हों ? दुनिया में करीब 30 करोड़ कानून हैं, लेकिन आज भी अपराध कम नहीं हुए। समाजशास्त्र, अपराध का जन्म गरीबी में मानता है, लेकिन जब एक करोड़पति, घूस देकर घटिया सीमेंट लगाकर पुल बनाता है तब कौन अभाव होता है? अपराध न्यायशास्त्र में भारी बदलाव की जरूरत है।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:19-08-23

ब्रिक्स की पहेली

संपादकीय

एक खराब विचार को मजबूती प्रदान करने की बात हो तो एक अच्छे ऐक्रोनिम (कुछ शब्दों के पहले अक्षर से एक नया संक्षिप्त शब्द गढ़ना) से बेहतर कुछ नहीं होता। ब्रिक्स के साथ भी ऐसा ही कुछ हुआ। जिस समय बीती सदी करवट ले रही थी उस समय गोल्डमैन सैक्स के अर्थशास्त्रियों ने यह जुमला दिया था। उसमें यह स्थापना दी गई थी कि ब्राजील, रूस, भारत और चीन का संयुक्त आकार सदी के मध्य तक दुनिया की सर्वाधिक विकसित छह अर्थव्यवस्थाओं से अधिक हो जाएगा। करीब एक

दशक तक यह विचार बरकरार रहा लेकिन उसके पश्चात यह ध्वस्त हो गया। चीन और भारत (2001 में क्रमश: छठे स्थान और 10वें से नीचे रहने वाले देश) का प्रदर्शन अच्छा रहा है और अब दोनों दुनिया की शीर्ष पांच अर्थव्यवस्थाओं में शुमार हैं। परंतु ब्राजील और रूस पीछे रह गए हैं। रूस तो अब शीर्ष 10 अर्थव्यवस्थाओं में भी नहीं नजर आ रहा। भारत की बात करें तो वह अन्य तीनों की तुलना में कम प्रति व्यक्ति आय के कारण अलग नजर आ रहा है। सरसरी तौर पर देखा जाए तो अन्य समानताएं भी नजर आती हैं। 2001 में ये चारों देश दुनिया के सर्वाधिक आबादी वाले छह देशों में शामिल थे और सर्वाधिक भूभाग वाले सात देशों में भी इनका स्थान था। ऐसे में भूभाग और जनांकिकीय तर्क इस संक्षिप्त नाम को और वैधता प्रदान करता है। परंतु तब से अब तक पाकिस्तान और नाइजीरिया की आबादी रूस और ब्राजील से अधिक हो गई है। इस बीच समूह के पीछे का मूल आर्थिक तर्क भी नदारद हो गया क्योंकि दक्षिण अफ्रीका को पांचवें सदस्य के रूप में शामिल कर लिया गया जिसकी अर्थव्यवस्था बमुश्किल भारत की अर्थव्यवस्था के दसवें हिस्से के बराबर है।

परंतु एक अच्छा संक्षिप्त नाम वही है जिसे नष्ट न होने दिया जाए। इसलिए ब्रिक्स की बैठकें नियमित रूप से होती रहीं और ऐसी ही एक बैठक अगले सप्ताह होनी है। ऐसी बैठकों के एजेंडे भी होते हैं और एक के बाद एक उनसे अव्यावहारिक स्थापनाएं निकलती रहती हैं। तमाम चर्चाओं में से केवल ब्रिक्स बैंक ही सामने आया लेकिन इसके आगमन से भी अंतरराष्ट्रीय विकास फंडिंग में बहुत अधिक अंतर नहीं आया। हालांकि कुछ गैर ब्रिक्स देश मसलन वेनेजुएला आदि को भी इसमें शामिल होने की अनुमति दी गई। एक दशक पहले समुद्र के भीतर ब्रिक्स केबल बिछाने की चर्चा हुई थी ताकि डेटा पाइप को अमेरिकी हस्तक्षेप से मुक्त रखा जा सके। इस दिशा में भी बहुत धीमी गति से प्रगति हुई है। बहरहाल, चीन भी ऐसी केबल को टैप करके डेटा चुराने में सक्षम है। नई मुद्रा व्यवस्था का भी प्रस्ताव रखा गया ताकि डॉलर का मुकाबला किया जा सके लेकिन भारत ऐसी किसी भी व्यवस्था से प्रसन्न नहीं होगा जो प्राथमिक रूप से चीन के आर्थिक विकास से संबद्ध हो। डॉलर को त्यागने और युआन की पहुंच बढ़ाने से भला क्या हासिल होगा?

इस बीच यह विचार जोर पकड़ गया है कि ब्रिक्स पश्चिमी दबदबे वाली विश्व व्यवस्था के लिए एक विकल्प प्रस्तुत कर सकता है। तकरीबन 40 देशों ने इसमें शामिल होने की रुचि दिखाई है। परंतु इस विचार के सफल होने की संभावना तो जी15 देशों के समूह से भी कम है जो ऐसे ही लक्ष्यों के साथ एक चौथाई सदी तक बरकरार रहा और करीब एक दशक पहले निष्क्रिय हो गया। ब्रिक्स का उसकी जगह लेना इसलिए भी मुश्किल है क्योंकि चीन और रूस किसी भी तरह विकासशील देश नहीं हैं। वे बस पश्चिम विरोधी मुल्क हैं।

उस लिहाज से देखा जाए तो ब्रिक्स चीन के कूटनीतिक प्रयासों का जरिया बन जाने का खतरा है। इस क्षेत्र में चीन के साझेदार उत्तर कोरिया, कंबोडिया और शायद म्यांमार तक सीमित हैं। यानी व्यापक कूटनीतिक समर्थक आधार से उसे फायदा होगा। जाहिर है चीन ब्रिक्स की सदस्यता को विस्तारित करने पर सबसे अधिक जोर दे रहा है। रूस के साथ उसकी नई नजदीकी, अफ्रीका में उसकी कूटनीतिक पैठ और खाड़ी में उसकी हालिया पकड़ के साथ चीन विस्तारित ब्रिक्स का इस्तेमाल एक ऐसे मंच के रूप में कर सकता है जो पश्चिम का वर्चस्व तोड़ने में मदद करे। इस बीच ब्रिक्स ने चीन के दबदबे वाले एक अन्य समूह शांघाई सहयोग संगठन के साथ भी संवाद बढ़ाया है।

भारत के लिए यह अजीब स्थिति हो सकती है क्योंकि चीन के साथ उसका रिश्ता विरोध का रहा है। उसने चीन से आयात और निवेश को रोकने के कदम उठाए हैं और चीनी तकनीक को वह अपने यहां अनुमति नहीं देता। इसके साथ ही जलवायु परिवर्तन सहित कई विकास संबंधी मसलों पर भारत की स्थिति विकसित देशों के रुख के विरुद्ध है परंतु

रक्षा आपूर्ति, तकनीकी पहुंच, लोगों की आवाजाही आदि के मामले में वह यूरोप और अमेरिका पर बहुत हद तक निर्भर है।भारत की राजनीतिक व्यवस्था भी चीन की तुलना में अधिक खुलेपन वाली है। इसके बावजूद चूंकि इंडोनेशिया, सऊदी अरब और संयुक्त अरब अमीरात जैसे देश ब्रिक्स की सदस्यता चाहते हैं तो भारत के लिए बिना उचित कारण के उनका प्रवेश रोकना कठिन होगा। भारत का कहना है कि वह नई सदस्यता के लिए स्पष्ट मानक चाहता है। परंतु क्या मौजूदा सदस्य भी किसी सार्थक मानक पर खरे उतरते हैं?

जनसत्ता

Date:19-08-23

डेटा सुरक्षा से जुड़े जटिल सवालों का क्या हो समाधान

अजित बालकृष्णन (लेखक इंटरनेट उद्यमी हैं)

पिछले हफ्ते मैं अपनी कार की पिछली सीट पर बैठ कर किंडल पर मशीन-लर्निंग तकनीक से जुड़ी हाल की सफलताओं के बारे में पढ़ रहा था। मुंबई हवाईअड्डे से घर तक जाने के दौरान मैं पढ़ने में गहराई से डूबा हुआ था (हालांकि मेरे दोस्तों को मेरे बारे में यह बात बेहद उबाऊ लगती है) और मेरे ड्राइवर गाड़ी चला रहे थे जो काफी लंबे समय से मेरी गाड़ी चला रहे हैं। मुझे अचानक महसूस हुआ कि मेरी कार की रफ्तार धीमी हो गई है। जब मैंने अपना सर ऊपर उठाया तो देखा कि हमारी कार के सामने एक ट्रैफिक पुलिसकर्मी हमें गाड़ी रोकने के लिए हाथ हिला रहा था। हमारी गाड़ी रुक गई और उस पुलिसकर्मी ने ड्राइवर के पास जाकर ड्राइविंग लाइसेंस दिखाने की मांग की।

इसके बाद उसने अपनी हथेली में मौजूद गैजेट को टैप किया। जाहिर है कि उसने ड्राइवर के लाइसेंस से कुछ डेटा दर्ज किया। जब मेरे ड्राइवर ने उससे पूछा कि हमने क्या गलत किया है, तब उसने मराठी में थोड़ा अपमानजनक सुर में कहा, 'आपकी कार जब आगे बढ़ी और उस वक्त पीली बत्ती जल रही थी और हरी बत्ती नहीं थी। ट्रैफिक लाइट पर मौजूद सीसीटीवी कैमरे में यह दिखा है।' इस दौरान मैं और मेरा ड्राइवर विनम्रता के साथ शांति से बैठे रहे क्योंकि हम मुंबई के ट्रैफिक पुलिसकर्मी से कोई बहस नहीं करना चाहते थे। इसके बाद पुलिसकर्मी कार के सामने गया और अपने गैजेट का इस्तेमाल कर कार की नंबर प्लेट की तस्वीर ले ली और फिर हाथ हिलाकर हमें आगे बढ़ने की अनुमति दे दी। हमने कोलाबा में अपने घर के लिए अपनी यात्रा फिर से शुरू की।

अगली सुबह, मुझे मुंबई ट्रैफिक पुलिस से एक एसएमएस मिला कि कार के पंजीकृत मालिक होने के नाते मुझ पर ट्रैफिक लाइट का उल्लंघन करने की वजह से 500 रुपये का जुर्माना लगाया गया है। ठीक उस वक्त मुझे अहसास हुआ कि मेरी कार का नंबर मेरे मोबाइल नंबर और मेरे आधारकार्ड नंबर से जुड़ा हुआ है और फिर यह मेरे आयकर रिटर्न नंबर से जुड़ने के साथ भी कई चीजों से जुड़ा हुआ है। निश्चित रूप से इसके बाद अब कुछ बचा ही नहीं है।

उस वक्त मेरे दिमाग में कुछ आंकड़े कौंध रहे थे जैसे कि मुंबई में हम सभी पर नजर रखने वाले प्रति वर्ग मील पर लगभग 170 निगरानी कैमरे हैं, जो दुनिया के किसी भी शहर में इतनी दूरी पर मौजूद कैमरे के लिहाज से 18वें पायदान पर है। दूसरी तरफ नई दिल्ली में प्रति वर्ग मील के दायरे में तकरीबन 1900 कैमरे हैं, जो दुनिया में इतनी दूरी के लिए

निगरानी कैमरों की सबसे अधिक संख्या है और यह लंदन, न्यूयॉर्क और यहां तक कि पेइचिंग या शांघाई से भी बहुत आगे है।

आमतौर पर जब मैं इन आंकड़ों को पढ़ता हूं तब मैं तकनीक में दिलचस्पी लेने वाले एक व्यक्ति के तौर पर संतुष्टि महसूस करता हूं क्योंकि ये आंकड़े संकेत देते हैं कि भारत कितना आधुनिक है, लेकिन अब मैंने इसको लेकर सोचना शुरू कर दिया है।

कुछ दिन पहले खबर आई कि हमारी सरकार ने डिजिटल सुरक्षा विधेयकर, 2023 पारित कर दिया है। आमतौर पर, मेरी प्रतिक्रिया होती कि यह कितना अच्छा विचार है और यह भारत को अग्रणी देश के रूप में स्थापित करने की दिशा में ले जाने का एक और कदम है क्योंकि देश अब तकनीक में भी अव्वल है। लेकिन ट्रैफिक पुलिस की घटना के बाद, मैं गहरी सोच में चला गया और यह सोचने लगा कि यह डेटा एकत्र करना कितना अच्छा है और कितना बुरा और क्या इस डेटा का दुरुपयोग प्राधिकरण के लोगों द्वारा किया जा सकता है?

भारत में 'डेटा सुरक्षा' को लेकर अधिकांश उत्साह नैसकॉम (आईटी सेवा कंपनियों का व्यापार संघ), इंटरनेट ऐंड मोबाइल एसोसिएशन ऑफ इंडिया (अब गूगल, माइक्रोसॉफ्ट और अन्य बड़ी प्रौद्योगिकी विदेशी कंपनियों का प्रतिनिधित्व करता है) और आश्चर्यजनक रूप से प्रमुख भारतीय दवा कंपनियों की तरफ से दिखाया जाता है। इसके अलावा 'इंटरनेट फ्रीडम फाउंडेशन' जैसे सामाजिक कार्यकर्ताओं के संगठन भी हैं और दूसरी ओर ऑनलाइन मीडिया कंपनियां किसी भी प्रकार के डेटा संरक्षण कानून के जोखिमों पर जोर-शोर से विमर्श कर रही हैं।

दूसरी ओर हमारी घबराहट इसलिए भी बढ़ रही है क्योंकि नागरिक के रूप में 'निजता' को लेकर हमारी सदियों पुरानी एक अवधारणा है। हमारे लिए 'निजता' का मतलब यह है कि कोई अजनबी हमारे घरों में झांके नहीं और हमारे 'निजी जीवन' में सेंध नहीं लगाए। निजता का मतलब है कि लोग इस बारे में बहुत उत्सुक न हों कि आप कितना पैसा कमाते हैं, आपका ताल्लुक किस जाति से है या सेहत से जुड़ी हमारी क्या समस्याएं हैं। इस तरह के सवालों के लिए हमारी सामान्य प्रतिक्रिया हमेशा से यह रही है कि 'आपको इससे क्या मतलब है!' यह आमतौर पर जिज्ञासा को वहीं खत्म कर देता है।

कंप्यूटर, डेटा और इंटरनेट की दुनिया में कई वर्षों तक इस बात पर बहुत अधिक सवाल नहीं उठाए गए कि किसी भी उपयोगकर्ता के डेटा का संभावित नकारात्मक उपयोग क्या हो सकता है जब तक कि 2018 में 'कैंब्रिज एनालिटिका के स्कैंडल' का पता नहीं चला। इस ब्रितानी कंपनी ने 8.7 करोड़ लोगों के प्रोफाइल एकत्र करने के लिए फेसबुक पर अपने ऐप का इस्तेमाल किया था और इनका इस्तेमाल अमेरिका के 2016 के चुनाव अभियान में डॉनल्ड ट्रंप की मदद करने के लिए किया था।

ऐसी चिंताओं को 2013 में तब और तेजी मिली जब एडवर्ड स्नोडेन ने खुलासा किया कि कैसे अमेरिकी खुफिया एजेंसियां नागरिकों की निगरानी करने के लिए निजी डेटा का उपयोग कर रही थीं। इसके बाद और भी चिंता बढ़ी जब नागरिकों के निजी डेटा का दुरुपयोग करने के लिए यूरोपीय अधिकारियों ने गूगल पर 5 करोड़ डॉलर और एमेजॉन पर 80 करोड़ डॉलर का जुर्माना लगाया।

लेकिन चिंता न करें, अतीत में भी इस तरह की नई चीजें आईं हैं जिनसे बेशक हमें लाभ मिला लेकिन ये कहीं न कहीं हमारी 'निजता' को जोखिम में डालने वाले थे। इसको लेकर एक प्रमुख उदाहरण यह है कि जब 19वीं शताब्दी में डाक कंपनियों ने पोस्टकार्ड पेश किए, तब इसको लेकर व्यापक तौर पर नकारात्मक प्रतिक्रियाएं आईं थीं, जैसे कि मैं पोस्टकार्ड का उपयोग क्यों करूंगा जब डाकिया सहित कोई भी व्यक्ति इसमें लिखा सब कुछ पढ़ सकता है। लेकिन समय के साथ, कम लागत और डिलिवरी की बेहतर रफ्तार के कारण पोस्टकार्ड मशहूर होते गए।

इन घटनाओं की वजह से 'व्यक्तिगत डेटा' और 'निजता' को लेकर एक नया और जटिल दृष्टिकोण बना है और अब यह आलम है कि दुनिया भर में सरकारें डेटा संरक्षण कानूनों को लागू करने की होड़ में जुटी हैं। ऐसा करते हुए सरकारों को लग रहा है कि वे दोहरी भूमिका में आ गईं हैं, पहली भूमिका यह है कि उन्हें निजी डेटा के उपयोग को लेकर व्यावसायिक कंपनियों और नागरिकों के बीच मध्यस्थता जरूर करनी है और दूसरे स्तर पर राष्ट्रीय रक्षा और अन्य भू-रणनीतिक उद्देश्यों के लिए अपने नागरिकों के डेटा के उपयोग में अन्य संप्रभु राज्यों के साथ प्रतिस्पर्धा करने वाले देश की भूमिका भी निभानी है।

दुनिया का सबसे अच्छा लोकतंत्र होने के साथ-साथ अर्थव्यवस्था के लिहाज से भी अग्रणी देश बनने के हमारे लक्ष्य को पूरा करने में डेटा संरक्षण बोर्ड जितनी कोई भी नीतिगत पहल महत्त्वपूर्ण नहीं होगी जिसकी परिकल्पना हाल ही पारित हुए डिजिटल व्यक्तिगत डेटा संरक्षण अधिनियम में की गई है। ऐसे में हमारे लिए यह अहम है कि इसके लिए तकनीक क्षेत्र से जुड़े देश के सबसे बुद्धिमान और गहरी सोच वाले लोग काम करें।

Date:19-08-23

प्रतिभा को अवसर

संपादकीय

किसी भी बच्चे के भीतर रचनात्मकता की असीम संभावनाएं होती हैं। अगर उसे एक सीमित ढांचे के भीतर समेट दिया जाता है तो उसकी प्रतिभा भी उसी दायरे में सिमट कर रह जाती है। इसलिए बचपन और किशोरावस्था में ही रुचियों की पहचान करके अगर किसी बच्चे को उसकी रुचि के क्षेत्र में जानने-समझने और कुछ करने का अवसर दिया जाए तो पूरी संभावना है कि भारी तादाद में बच्चों की प्रतिभा सामने आएगी और उसका लाभ देश और समाज को मिलेगा। हालांकि शिक्षा व्यवस्था में यह एक बुनियादी पक्ष होना चाहिए और कुछ हद तक इसका खयाल रखा भी गया है, मगर अब सरकार औपचारिक रूप से इस दिशा में एक ठोस पहल करने जा रही है।

गौरतलब है कि शिक्षा मंत्रालय स्कूली विद्यार्थियों को वैज्ञानिक पद्धतियों और प्रयोगों से परिचित करा कर उन्हें अनुसंधान और खोज का अवसर प्रदान करने के उद्देश्य से 'प्रयास' यानी 'प्रमोशन आफ रिसर्च एटीट्यूड इन यंग एंड एन्सपायरिंग स्टूडेंट्स' योजना शुरू करने जा रहा है। इस योजना का मकसद युवा विद्यार्थियों के बीच वैज्ञानिक चिंतन उत्पन्न करना और साक्ष्य आधारित विज्ञान प्रक्रिया, नवीनता और रचनात्मकता का विकास करना है।

यह एक तथ्य है कि बच्चों और किशोरों में खोजने और सीखने की प्रक्रिया काफी तीक्ष्ण होती है। खासकर अगर पढ़ाई-लिखाई के दौरान उनकी रुचि के विषय को निर्बाध तरीके से विकसित होने दिया जाए तो उनकी रचनात्मकता अक्सर कुछ नया खोज लाती है। लेकिन हमारे यहां आमतौर पर निर्धारित पाठ्यक्रम ज्यादातर बच्चों के लिए शिक्षण के ढांचे का एक अनिवार्य हिस्सा होता है और उसी के मुताबिक उन्हें अपनी पढ़ाई पूरी करनी होती है। इसमें कई वैसे बच्चों की प्रतिभा दबी रह जाती है, जिनकी अभिरुचियों को सही दिशा और उसे समझने का अवसर नहीं मिल पाता है। बल्कि इसके उलट ऐसे मामले आम हैं, जिनमें स्कूली शिक्षा के दौरान कई बार अभिभावक बच्चों को ऐसे विषयों की पढ़ाई में झोंक देते हैं, जिसे उन्हें जबरन पढ़ना पड़ता है। यह मान लिया जाता है कि निर्धारित पाठ्यक्रम और अभिभावकों की इच्छा के मुताबिक ही बच्चों की शिक्षा-दीक्षा होनी चाहिए, उन्हें अपनी पसंद के विषय में कुछ नया समझने और सीखने के प्रति हतोत्साहित किया जाता है।

यह एक ऐसी स्थिति होती है, जिसकी वजह से स्कूली शिक्षा के दौरान बहुत सारे बच्चों की रचनात्मक प्रतिभा का एक तरह से दमन हो जाता है। जो बच्चे ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में नई खोज के वाहक बन सकते हैं, वे एक बने-बनाए रास्ते के यात्री बने रह जाते हैं। इस लिहाज से देखें तो 'प्रयास' की अहमियत इस रूप में दर्ज की जा सकती है कि इसमें व्यक्तिगत रूप से या समूहों में अनुसंधान या खोज करने के लिए विद्यार्थियों की क्षमता विकास पर जोर दिया गया है। दरअसल, बच्चे सबसे ज्यादा अपने आसपास के वातावरण को देख-समझ कर सीखते हैं। शायद यही वजह है कि इस योजना के तहत किसी स्थानीय समस्या की पहचान और उसका अध्ययन करने, इसके पीछे के वैज्ञानिक कारणों की जांच करने और समाधान खोजने के साथ-साथ किसी विचार, कल्पना या अवधारणा पर शोध करने पर जोर दिया गया है। जाहिर है, अगर बच्चों और किशोरों के मनोविज्ञान की समझ रखने वाले विशेषज्ञों के सुचिंतित निर्देशन में सही दिशा में अवसर उपलब्ध कराए गए तो यह योजना विद्यार्थियों की कल्पनाशीलता और रचनात्मकता के आकाश को विस्तार देने के लिहाज से एक अहम पहल साबित हो सकती है।

राष्ट्रीय सहारा

Date:19-08-23

रूढ़िवादिता से मुक्ति की भाषा

बिभा त्रिपाठी

भारत के प्रधान न्यायाधीश की पहल पर 'हैंडबुक आन कमबैटिंग जेंडर स्टीरियोटाइप्स' शीर्षक एक ऐसी पुस्तिका प्रकाशित हुई है, जिसमें महिलाओं और बच्चियों के लिए न सिर्फ लिंग-तटस्थ शब्दों की सूची दी गई है, बल्कि उनकी गरिमा और मर्यादा के अनुरूप शब्दों की रूपरेखा भी बनाई गई है, ताकि भविष्य में जब न्यायालय अपने निर्णय सुनाएं, विधि की कक्षाओं में जब महिला विषयक कानूनों, अपराधों और प्रावधानों की शिक्षा दी जाए, तो इसी गरिमायुक्त शब्दावली का प्रयोग किया जाए। यह समाज को उसके पूर्वाग्रहों, रूढ़िवादिता, पक्षपाती सोच से ऊपर उठाने और उसे आगे ले जाने में मददगार साबित होगा।

चाहे समाज हो, समाज विज्ञानी, अपराध शास्त्री हों या फिर अध्ययन की अन्य कोई शाखा, वहां संकल्पनाओं की विशिष्ट व्याख्या परिभाषाओं के माध्यम से ही होती है। हम आदतन भी व्यक्ति, वस्तु, व्यवहार, क्रिया, प्रतिक्रिया आदि को परिभाषित करते रहते हैं। परिभाषाएं हमारे मस्तिष्क की सोच को भी एक निश्चित परिधि में बांधकर उसकी व्याख्या, विश्लेषण और मूल्यांकन करने को बाध्य कर देती हैं। इसीलिए उत्तर-आधुनिक विचारकों ने परिभाषाओं के बंधन को ढीला करने की कवायद भी की।

ऐसी पुस्तिका की आवश्यकता लंबे समय से महसूस की जा रही थी, क्योंकि सामाजिक ताना-बाना रचने वाली रूढ़िवादी सोच का परोक्ष प्रभाव लोगों के समाजीकरण में दिखाई देता है। आपकी सोच पूर्वाग्रह ग्रस्त और एकपक्षीय है, आपको ज्ञात भी नहीं होता, क्योंकि यह अचेतन से अवचेतन और अवचेतन से चेतन मन-मस्तिष्क पर कैसे असर डालता रहता है, उसका हमें अंदाजा भी नहीं होता और परिणामस्वरूप हम अपनी कार्यप्रणाली, अपने घर और बाहर के व्यवहार में इसका अनजाने ही प्रयोग करते रहते हैं। विडंबना तो यह कि ऐसी भाषा-शैली और शब्द विन्यास हमें न्यायिक निर्णयों में भी देखने को मिलने लगे। इसलिए समय की मांग को समझते हुए यह पुस्तिका तैयार की गई।

हालांकि कुछ लोगों के मन में यह भी सवाल है कि क्या होगा, अगर प्रस्तावित शब्दावली का प्रयोग नहीं होगा? क्या इसको बाध्यकारी बनाने के लिए भी कोई कानून बनाया जाएगा? इन आशंकाओं के लिए सिर्फ यही कहा जा सकता है कि इस पुस्तिका में प्रयुक्त शब्दों का अधिकाधिक प्रयोग ही इसे व्यवहार की भाषा बना पाएगा। प्रस्तावनाएं दस्तावेजों की कुंजी मानी जाती हैं। इस पुस्तिका की प्रस्तावना प्रधान न्यायाधीश ने स्वयं लिखी है और यह याद दिलाने का प्रयास किया है कि न्यायमूर्ति की शपथ के क्या मायने होते हैं। जब एक न्यायमूर्ति शपथ लेता है तो वह यह सुनिश्चित करता है कि अपने कर्तव्यों का निर्वहन वह बिना किसी भय, पक्षपात और दूषित मनोभाव से करेगा। उन्होंने अत्यंत दृढ़ता से इस बात को रखने का प्रयास किया है कि हर मामले का निर्णय उसके गुण-दोषों के आधार पर होना चाहिए, पूर्व निश्चित मान्यताओं के आधार पर नहीं।

उन्होंने कानून के जीवन में भाषा के महत्त्व की ओर भी इंगित करते हुए कहा है कि शब्द ही वे पहिए हैं, जिनसे हम कानून के मूल्यों को संप्रेषित कर पाते हैं। जब इन शब्दों का प्रयोग एक न्यायाधीश करता है तो वह केवल कानून का निर्वचन नहीं करता, बल्कि समाज के प्रति अपनी समझ को भी व्यक्त करता है। इसलिए जब उसके द्वारा एक लैंगिक दृष्टिकोण से न्यायपूर्ण शब्दावली का इस्तेमाल किया जाएगा, तो पूरे समाज पर इसका सकारात्मक असर पड़ेगा और फिर समाज में भी लोग उन शब्दों का प्रयोग करेंगे।

यह पुस्तिका लैंगिक रूढ़िवादिता को दूर करने और न्यायाधीशों और विधिक समुदाय की सहायता के लिए तैयार की गई है, ताकि ऐसे शब्दों की पहचान हो सके और उनके नकारात्मक प्रभावों को समझा और उन्हें दूर करने का प्रयास किया जा सके। अब समाज में विवाहेतर संबंध या बिना विवाह के संबंध भी बन रहे हैं। समाज में विभाजन का स्तर बढ़ता जाता है, तो 'एनामी' की स्थिति आती है, जिसे दुर्खीम ने प्रतिमान विहीनता कहा था। इसका शब्दकोशीय अर्थ है 'सामाजिक और नैतिक मान्यताओं के प्रति सम्मान में कमी होना या सम्मान का न होना'। इस प्रतिमान विहीनता का शिकार स्त्री और पुरुष सभी होते हैं।

ऐसे में यह पुस्तिका उल्लिखित करती है कि हमें महिलाओं और बच्चियों के लिए नकारात्मक और घृणित मानसिकता के द्योतक शब्दों के स्थान पर तटस्थ शब्दों का प्रयोग करना पड़ेगा। जैसे, 'परपुरुषगामी स्त्री' के लिए शब्द होगा 'ऐसी स्त्री

जो विवाहेतर लैंगिक संबंध में है'। 'चक्कर' के स्थान पर 'विवाह से बाहर संबंध', 'बास्टर्ड' के स्थान पर 'वह बच्चा जिसके माता-पिता आपस में विवाहित नहीं हैं'। इसी तरह 'पवित्र महिला' या 'गिरी हुई महिला' के स्थान पर सिर्फ 'महिला' शब्द का प्रयोग किया जाएगा। और पतिव्रता पत्नी, आज्ञाकारी और विश्वासपात्र पत्नी के स्थान पर सिर्फ 'पत्नी' शब्द का प्रयोग किया जाएगा।

इस प्रसंग में प्रसिद्ध लेखिका सिमोन द बोउवा ने कहा था कि 'स्त्रियां पैदा नहीं होतीं, बल्कि बनाई जाती हैं।' हम गढ़ते हैं एक स्त्री की परिभाषा और आजीवन कसते रहते हैं उसको एक कसौटी पर। बाबा साहेब भीमराव आंबेडकर ने भी कहा था कि 'संस्कारों के नाम पर महिलाओं को अंधविश्वासों में जकड़ा जाता है, जिससे वे आजीवन मुक्त नहीं हो पाती हैं।' इस पुस्तिका के एक खंड में ऐसे निर्णयों का भी उल्लेख किया गया है, जिनसे इन्हीं मान्यताओं को तोड़ने का प्रयास किया गया है, चाहे वह भंवरी देवी मामले के बाद तैयार 'विशाखा' के दिशा-निर्देश हों, जो बाद में कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न को रोकने के कानून बनाने में मददगार हुए या फिर जोसेफ शाइन का मामला हो, जिसमें जारकर्म को अपराध के दायरे से बाहर रखने का प्रयास किया गया।

पहले ऐसे अनेक निर्णय हुए हैं, जिनमें महिलाओं के हित-रक्षा पर दूरगामी प्रभाव भी पड़ा है। चाहे नैना साहनी तंदूर कांड के मामले में सुशील शर्मा के मृत्युदंड को आजीवन कारावास में बदलते समय कहा गया कि नैना साहनी एक पढ़ी-लिखी और महत्त्वाकांक्षी महिला थी, वह एक गरीब और असहाय महिला नहीं थी। चाहे शबनम की फांसी के मामले में कहा गया कि पिता की हत्या करने वाली पुत्री, जिससे उम्मीद की जाती है कि वह अपने पिता का आजीवन मान रखेगी, उसे फांसी से कम किसी सजा का प्रस्ताव नहीं किया जा सकता।

ऐसे निर्णयों की फेहरिस्त लंबी है और रूढ़िवादिता की जड़ें भी काफी गहरी हैं। इसलिए एक महिला को महिला होने के नाते भावुक, कमजोर और अतार्किक कहना उसके व्यक्तित्व को नकारना है। यह पुस्तिका हर प्रकार की आशंकाओं को निर्मूल सिद्ध करते हुए बड़े ही सकारात्मक ढंग से यह पक्ष प्रस्तुत करती है कि ऐसी घिसी-पिटी मान्यताओं से मुक्ति भी मिल सकती है। यानी, न्यायिक निर्णय लिखते समय, महिलाओं के मुद्दों पर बहस करते समय, विधि की कक्षाओं में पढ़ाते हुए और समाज में चल रही बहस के समय इस बात को ध्यान में रखना होगा कि हम रूढ़िवादी सोच के प्रकटीकरण से बचें। स्त्रियों के व्यवहार को पूर्वाग्रही सोच से परिभाषित न करें और स्वस्थ समाज की रचना करने के लिए अपनी भाषा को परिमार्जित करें और लोगों को भी प्रेरित करते रहें।

Live हिन्दुस्तान.com

Date:19-08-23

मास्टर स्ट्रोक योजना

संपादकीय

केंद्रीय मंत्रिमंडल ने बुधवार को शहरी और ग्रामीण क्षेत्र कामगारों और पारंपरिक शिल्पकारों के लिए 13 हजार करोड़ रुपये की विश्वकर्मा योजना को मंजूरी दी है। 2024 के लोक सभा चुनावों को देखते हुए इसे केंद्र सरकार का मास्टरस्ट्रोक कहा जा सकता है, लेकिन वास्तविकता यह है कि विरासत में मिले पारंपरिक काम से जुड़े परिवारों के धार्मिक उत्थान के लिए यह योजना बहुत अहम है। पारंपरिक कामगारों और शिल्पकारों की आर्थिक स्थिति पिछले कुछ वर्षों से अत्यंत खराब हो गई है। इनके पास कच्चे माल और पूंजी, दोनों का अभाव रहता है। किसी से कर्ज लेकर घरों में निर्मित होने वाली वस्तुओं का उत्पादन करते भी हैं तो मशीन निर्मित वस्तुओं मुकाबला करना इनके लिए मुश्किल भरा हो गया है। आर्थिक कठिनाइयों से जूझ रहे कामगार और शिल्पकारों की युवा पीढ़ी अपने पारंपरिक काम के प्रति उदासीन होकर दूसरी छोटी-मोटी नौकरी करना पसंद करने लगी है। अगर इन्हें प्रोत्साहित नहीं किया गया तो भारत की हस्तशिल्प विधा धीरे-धीरे विलुप्त हो सकती है। हालांकि उपभोक्ताओं को हस्तनिर्मित वस्तुएं मशीन निर्मित वस्तुओं की तुलना में ज्यादा आकर्षित करती हैं, लेकिन दोनों की कीमतों में भारी अंतर होता है। हस्त निर्मित वस्तुएं महंगी होती हैं। इसलिए मशीन निर्मित वस्तुओं का प्रचलन ज्यादा हो गया है। प्रधानमंत्री विश्वकर्मा योजना के तहत पारंपरिक काम से जुड़े 18 प्रकार के कारीगरों और शिल्पकारों का कौशल विकास किया जाएगा। योजना का लक्ष्य करीब 30 लाख पारंपरिक कामगारों और शिल्पकारों को लाभ पहुंचाना है। इनके कौशल विकास के लिए दो तरह के कार्यक्रम चलाए जाएंगे। शुरुआत में इन्हें प्रशिक्षित किया जाएगा और इस दौरान इन्हें प्रति दिन 500 रुपये दिए जाएंगे। प्रशिक्षण के बाद इनको स्वरोजगार के लिए आसान ब्याज पर लोन दिया जाएगा। वित्तीय सहायता केंद्र सरकार मुहैया कराएगी और राज्य सरकारें इन्हें सहयोग करेंगी। देखा गया है कि केंद्र की ऐसी योजनाओं का सहयोग राज्य की विरोधी दलों की सरकारें नहीं करतीं। केंद्र और राज्य सरकारों के बीच तालमेल नहीं हुआ तो इसकी सफलता संदिग्ध है। इस योजना के सामने यह बड़ी चुनौती है। दूसरी चुनौती इनके द्वारा निर्मित वस्तुओं को बाजार मुहैया कराने की है। उम्मीद है कि प्रधानमंत्री विश्वकर्मा योजना में राज्य सरकारें भी बढ़-चढ़कर सहयोग करेंगी।

Date:19-08-23

लैंगिक समानता की तलाश में निकली एक पुस्तिका

प्रतिमा पांडेय, (फीचर एडीटर)

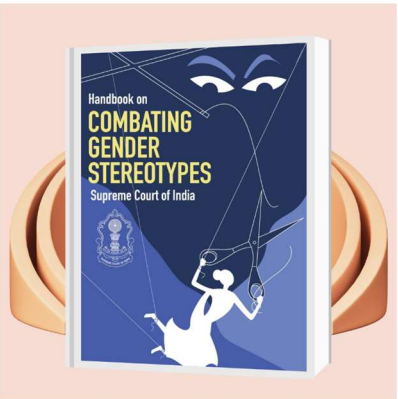

युवा पीढ़ी के लिए सामाजिक सुधारों की नींव पड़ते देखना सचमुच सुखद है। यह हमारे आत्मगौरव को भी बढ़ाता है। एक ऐसा ही प्रेरक उदाहरण पेश करती है, अदालती फैसलों और अदालती भाषा में लैंगिक रूढ़िवादिता से जुड़े शब्दों का निषेध करती वह पुस्तिका (हैंडबुक), जिसे हाल ही में देश के प्रधान न्यायाधीश डी वाई चंद्रचूड़ ने लॉन्च की। एक मजबूत भारत की दिशा में यह सराहनीय पहल है। इस पुस्तिका में न्यायिक बिरादरी से जिन बदलावों की अपेक्षा की गई है, वे बदलाव

हमारी न्याय प्रक्रिया में लैंगिक पहचान से जुड़ी रूढ़ियों को मिटाने में ही नहीं, सामाजिक मानसिकता को भी बदलने में अहम भूमिका निभाएंगे।

हम सब जानते हैं कि भाषा मानसिकता के प्रदर्शन-निर्धारण का एक कारगर माध्यम है। महात्मा गांधी ने जब 'हरिजन' शब्द का विकल्प दिया, तो आलोचकों ने भले इसकी व्याख्या अपने-अपने तरीके से की, पर उनके इस एक कदम ने जनमानस को अस्पृश्यों के प्रति संवेदनशील बनाने में क्रांतिकारी भूमिका निभाई। इसलिए इस पुस्तिका में न्यायिक प्रक्रिया के दौरान महिलाओं को खास 'फ्रेम' में फिट करने वाले शब्दों को बदलकर पूर्वाग्रह-मुक्त करने की कोशिश दिखती है। जैसे अब तक चले आ रहे शब्दों 'ड्यूटीफुल वाइफ, इंडियन वूमन, वेस्टर्न वूमन' और 'करियर वूमन' के लिए सिर्फ 'वूमन' शब्द की तजवीज ज्यादा तटस्थ है। इसी तरह, 'प्रॉस्टीट्यूट' शब्द को बदलकर 'सेक्स वर्कर', 'स्पिन्स्टर' को बदलकर 'अनमैरिड वूमन' किया गया है।

तीस पन्नों की इस पुस्तिका में ऐसे कई शब्द शामिल किए गए हैं और सिर्फ शब्दों व जुमलों पर ही बात नहीं की गई है, इसमें स्त्री संबंधी पूर्वधारणाओं के संदर्भ में उदाहरणों के साथ सही नजरिया भी बताया गया है। जैसे, यह आम धारणा है कि 'महिलाएं बेहद भावुक, अतार्किक होती हैं और वे सटीक निर्णय नहीं कर सकतीं।' पुस्तिका बताती है, एक व्यक्ति की लैंगिक पहचान उसके तर्कपूर्ण विचारों की क्षमता को निर्धारित या प्रभावित नहीं करती। सुप्रीम कोर्ट की वेबसाइट पर अपलोड इस पुस्तिका की शुरुआती पंक्तियां अपना उद्देश्य बताती हैं, 'भाषा किसी भी कानून के जीवन के लिए अहम है और शब्द वे माध्यम हैं, जिनसे किसी कानून के आदर्श अभिव्यक्त किए जाते हैं।'

एक संवेदनशील समाज के निर्माण की शुरुआत कहां-कहां से हो सकती है, यह पहल इसकी एक बानगी है। हमारे देश को ऐसी कवायदों की बहुत जरूरत है, क्योंकि लैंगिक समानता और सहभागिता के मामले में महिलाएं काफी पीछे हैं। शीर्ष न्यायपालिका में ही उनके प्रतिनिधित्व को लें, तो वर्तमान में सर्वोच्च न्यायालय के कुल 32 जजों में सिर्फ तीन महिलाएं हैं। न्यायपालिका का लैंगिक मामलों में संवेदनशील होना कितना जरूरी है, इसका अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि हमारे यहां ्त्रिरयों के साथ हुए अधिकतर आपराधिक मामले दर्ज ही नहीं कराए जाते, क्योंकि यह रूढ़ धारणा है कि उनके साथ-साथ पूरे परिवार को मानसिक उत्पीड़न झेलना पड़ेगा। ऐसे में, शीर्ष अदालत की इस ताजा पहल की सार्थकता तभी साबित होगी, जब इस पुस्तिका का असर न्यायिक क्षेत्र के बाहर के प्रशासनिक अमले पर भी पड़े। खासकर पुलिस महकमे में, जहां ्त्रिरयों के प्रति पूर्वाग्रह किसी से छिपे नहीं हैं।

ऐसे में, लैंगिक रूढ़ियों पर हमले करने वाले फैसले उस आधी आबादी का मनोबल मजबूत करते हैं, जिसका एक बहुत बड़ा हिस्सा आए दिन घरेलू हिंसा, लिव-इन संबंध में धोखाधड़ी, तरह-तरह के उत्पीड़न का मुकाबला करता है, वह भी सिर्फ इसलिए कि स्त्री अपनी सामाजिक छवि से इतर छवि में खुद को अभिव्यक्त कर रही होती है और एक कटु सच यह है कि टूटा हुआ मनोबल उसे सामाजिक वर्जनाओं, बेड़ियों से बाहर नहीं निकलने देता।

इसमें दोराय नहीं कि 21वीं सदी की ्त्रिरयों की स्थिति वही नहीं है, जो पिछली सदी में थी। समाज के विभिन्न क्षेत्रों में उनकी सहभागिता और स्वीकार्यता बढ़ी है, लेकिन लैंगिक बराबरी की दिशा में हो रही कोशिशें अब भी पर्याप्त नहीं हैं। ऐसे में, जब उनके हक में सुधारों की एक ताजा लहर सुप्रीम कोर्ट से उठती हुई दिखी, तो एक आश्वस्तकारी आहट मिली कि समाज तेजी से करवट लेने के लिए खुद को शायद अब तैयार करे। देश की तरक्की के लिए यह बहुत जरूरी है कि

आधी आबादी को बतौर नागरिक अपनी भूमिका लायक माहौल मिले। प्रधान न्यायाधीश का यह परिवर्तनकारी फैसला उस कपूर की तरह है, जो धीरे-धीरे जलते हुए पूरे परिवेश को शुद्ध कर देता है।